उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

मूल्य : ₹ 50/-

वर्ष 18 - जनवरी-अप्रैल 2025

संपादक : कृष्ण बिहारी

निकट - 40

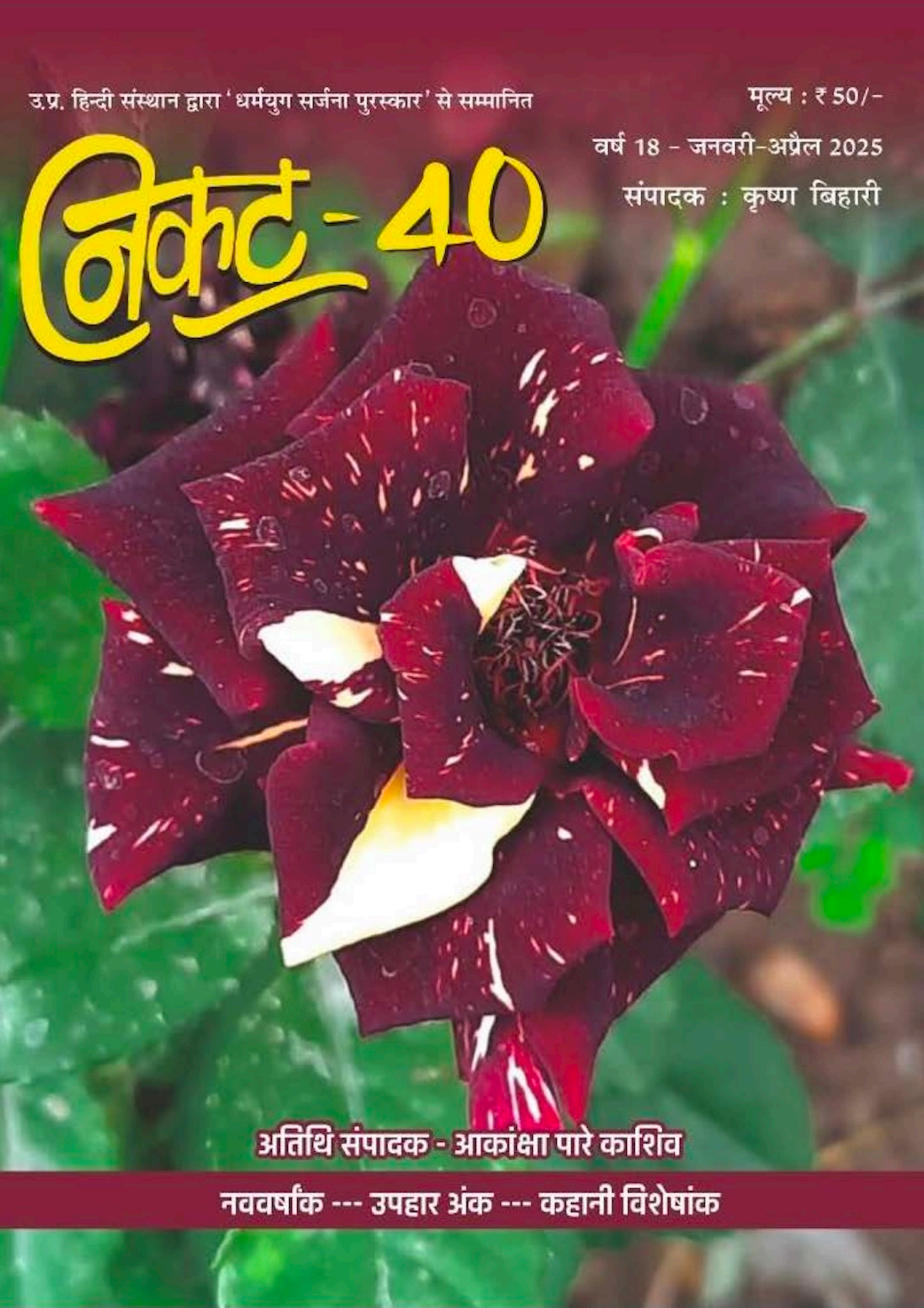

अतिथि संपादक - आकांक्षा पारे काशिव

नववर्षांक --- उपहार अंक --- कहानी विशेषांक

निकट

संयुक्त अरब इमारात से शुरू, अब भारत से प्रकाशित

कथा प्रधान त्रैमासिकी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा धर्मयुग सर्जना पुरस्कार से सम्मानित

वर्ष : 18, अंक-40, जनवरी-अप्रैल 2025
Editor: Krishna Bihari
HIG-46, B Block, Panki
Kanpur-208020
mobile: 6307435896
email: krishnatbihari@yahoo.com

प्रति रुपए 50/-
वार्षिक रुपए 500/-
तीन वर्ष रुपए 1500/-
(डाक खर्च अलग से)
भुगतान ऑन लाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं :

बैंक : बैंक ऑफ बड़ोदा
खाता संख्या : 28050100010192
खाता धारक : Krishna Behari Tripathi
आई एफ एस सी : BARB0SAPRBS
बैंक शाखा : सराय मसवानपुर ब्रांच, कानपुर
उत्तर प्रदेश

6307435896@ybl

भारतीय भाषा संवर्धन संस्थान
द्वारा सहयोग प्राप्त

सर्वाधिकार : सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है । प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं । किसी प्रकार के विवाद लखनऊ न्यायालय में विचारणीय।
मुद्रक : अमन प्रकाशन, 104-ए / 80-सी, कानपुर, (उ. प्र.) मो.- 9044344050

निकट पत्रिका से संबन्धित सभी पद अवैतनिक
संपादक,स्वामी कृष्ण बिहारी, एच आई जी-46,पनकी बी ब्लॉक ,कानपुर-208020 से प्रकाशित।

निकट

संस्थापक – अशोक कुमार

संपादक – कृष्ण बिहारी

इस अंक की अतिथि संपादक – आकांक्षा पारे काशिव

उप संपादक

धनंजय कुमार सिंह

भूपेन्द्र कुमार सिंह

सहयोगी

राधेश्याम यादव

राम नारायण त्रिपाठी

व्यवस्थापक

अभिनव त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार

राजेश तिवारी एडवोकेट

2/241, विजयखंड, गोमती नगर

लखनऊ

आवरण

अभिनव बाजपेई

रेखांकन

शशिभूषण बडोनी

अगला अंक 41, मई-अगस्त 2025

इस अंक में -

संपादकीय :

बात करें तो करें क्या – आकांक्षा पारे काशिव **-03**

समय से बात :

प्रियंवद को चाहने/न चाहने वाले – कृष्ण बिहारी -05

कहानी -

दलदल – अभिज्ञात -06
अचंभा - अंजू शर्मा -19
खेल में बच्चे - अनुकृति उपाध्याय **-25**
मौत के बीच कैमरे - अनिता रश्मि -30
साहित्य-फाहित्य - गंभीर सिंह पालनी -34
मक्खन खाना घातक है - ममता कालिया -37
गलती गुनाह के बीच - नीलिमा शर्मा -40
एक दिन बदलेगा संसार देखना (नाटक) – प्रियदर्शन -45
कबीर माया पापणीं - पंकज सुबीर -55
पुल – प्रज्ञा -60
सात साल उनतीस दिन - प्रियंका ओम -65
संगी - परिधि शर्मा -68
मौत की उलटबांसी - राजेन्द्र दानी -72
बारिश के फूल – शैलेय -74
मकान खाली है - शैली बक्षी खड़कोतकर -77
एक उदास सिम्फ़नी - सुशांत सुप्रिय -81
दर-ब-दर... - तेजेन्द्र शर्मा -84
दस माशे की दुनिया - योगिता यादव -88

(अनुक्रम में कहानीकारों के नाम अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार)

नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत पुस्तक पर :

हिंसा और अन्याय से मुक्ति का स्वप्न - रश्मि भारद्वाज -94

लघुकथा

सुभाष नीरव, मार्टिन जॉन

संपादकीय

बात करें तो करें क्या

प्रियंवद जैसे रचनाकार पर निकट का अंक निकल चुका हो और उसके ठीक बाद का अंक निकालना हो, तो कैसी बैचेनी होगी इसे समझना बहुत कठिन नहीं है। एक सफल अंक के बाद का दबाव अवचेतन में काम के साथ लगातार चलता रहता है। कृष्ण बिहारी जी ने सुबह जब फोन पर जनवरी अंक के संपादन का कहा, तो हां के सिवा कुछ नहीं निकला। उस वक्त सोचा ही नहीं कि हो पाएगा या नहीं। सुबह की भाग-दौड़ खत्म कर जब इत्मीनान से सोचा, तब लगा क्या यह हो पाएगा। नौकरी के लिए आप चाहे जितना काम कर लें, लेकिन जब कोई स्वतंत्र काम आपके जिम्मे होता है, तो उसे बेहतर ही नहीं श्रेष्ठ बनाने की इच्छा जाग जाती है। काम शुरू करना हमेशा से ही आसान लगता है। लेकिन काम धीरे-धीरे जब रफ्तार पकड़ लेता है, तब उस रफ्तार को सही समय पर रोकना सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। तमाम रचनाओं को पढ़ना छांटना और तय करना कि एक संतुल न बना रहे सबसे महत्वपूर्ण होता है। रफ्तार रोकने की इस कड़ी में सबसे महत्वपूर्ण है, संपादकीय लिखना। सारे काम से निवृत्त होकर एक खालीपन को फिर शब्दों से भरना होता है। यह पाठको से बातचीत का एक माध्यम है।

इस दौर में जब चार देश युद्ध से जूझ रहे हों, स्थायी रोजगार की चिंता करने के बजाय कुछ युवा सोशल मीडिया से पैसे कमाने की जुगत भिड़ा रहे हों, एक राज्य के छोटे से कस्बेनुमा शहर में कुछ मासूम डॉक्टर-इंजीनियर बनने की असफल कोशिश में फंदों पर झूल रहे हों, बच्चों को स्नेह से देखने के बजाय वासना की दृष्टि से देखे जाने वाली नजरों की संख्या बढ़ रही हो, एनसीआरबी के आंकड़े फिर-फिर औरतों के प्रति अपराध के आंकड़ों में बढ़ोतरी दिखा रहे हो तब ऐसे वक्त में बात की जाए तो क्या की जाए।

बावजूद इन सबके पार्क, ट्रेन, बस, सड़क, डाइनिंग टेबल ऐसी कौन सी जगह है, जहां पांच इंच की स्क्रीन ने कब्जा न जमा रखा हो। आसपास से बेखबर सबके हाथ में अपनी-अपनी दुनिया है। इसका दोष सिर्फ युवा पीढ़ी को ही क्यों देना। हर उम्र के लिए सोशल मीडिया नाम के दैत्य के पास कोई न कोई खुराक है। पिछले दिनों एक छह साल की बातूनी बच्ची से मैंने 'बड़े होकर क्या बनोगी' जैसा घिसा-पिटा सवाल पूछा। बिना देरी किए उत्तर आया, 'इन्फ्लुएंसर।' यह बनने के लिए उसके पास बड़ा कारण था, 'क्योंकि सब उनकी बात मानते हैं, मम्मी भी।'

सारा झगड़ा तो बात मानने का ही है, चाहे धार्मिक हो या राजनीतिक। चाहे सामाजिक हो या आर्थिक। तार्किक बातें किसी को कहां पसंद हैं। हर देश अपना वर्चस्व चाहता है और अपनी बात मनवाने के लिए जो हो सकता है, कर गुजरता है। बात मनवाने के लिए संवाद तो सिर्फ सोशल मीडिया कर रहा है, वह भी इन्फ्लुएंसरों के जरिये। इन्फ्लुएंसरों ने कह दिया तो पत्थर की लकीर। 'फॉलोअर' को आंख मूंद कर उस बात पर भरोसा करना ही है। इस बीच इन्फ्लुएंसरों के नित नए 'चैलेंज' या 'टास्क' का काम चलता रहता है।

'लाइक', 'शेयर', 'सबस्क्राइब' पीढ़ी इन्हें 'फॉलो' करना अपने जीवन का सबसे जरूरी काम मानती है। इन लोगों की वजह से एक पूरी पीढ़ी का दुनिया देखने का नजरिया बिलकुल बदल गया है। वास्तविक जीवन से कटी इस पीढ़ी के लिए भविष्य जैसा कुछ नहीं है। जो है आज है, खाना, पीना, सोना और घूमना। मुझे विश्व युद्ध से ज्यादा पांच इंच की इस स्क्रीन से डर लगता है।

इस बीच जब कुछ युवाओं ने कहीं से नंबर खोज कर पूछा कि निकट के अंक के लिए कहानी कब तक भेजना है, तो मन में आशा का एक अंकुर फूट जाता है। कुछ बच्चे हैं, जो अभी भी पढ़ रहे हैं, लिखने का अभ्यास कर रहे हैं। इस यात्रा में कुछ कहानियां कच्ची मिलीं, तो कुछ बहुत लंबी, जिन्हें लेना संभव नहीं था। कई युवा कहानी लौटाने पर अपनी गलतियां जानना चाहते थे। कुछ लोगों को ठीक से समझा पाई, कुछ को शायद नहीं भी। नई पीढ़ी के लेखकों की ज्यादातर कहानियों में सोशल मीडिया कहीं न कहीं मौजूद था। एक युवा साथी की कच्ची कहानी में नायक फोन से इतना ऊब जाता है कि नौकरी छोड़ कर शांति की तलाश में हिमालय पर निकल जाता है और फिर उसका कहीं कुछ पता नहीं चलता।

लगभग हर कहानी में कहीं न कहीं आसपास का समाज मौजूद है। लेकिन फिर भी समाज से तुरंत जुड़ जाएं ऐसी कहानियों का मौजूदा दौर में अभाव दिखाई देता है। लेखक अपनी ओर से प्रयत्न कर रहे हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। तब क्या यह माना जाए कि पाठक बदल रहे हैं। उनकी पसंद बदल रही है। समाज का ताना-बाना इस तरह बदल गया है कि संभवतः अब ऐसे लोग ही नहीं बचे हैं, जो राजा निरबंसिया, चीफ की दावत, ताई, बंद गली का आखिरी मकान, काकी, जानवर और जानवर, कोसी का घटवार, छोटे-छोटे ताजमहल, बादलों के घेरे या फिर परिंदे जैसी कहानियों की विषय वस्तु और उनके पात्रों को दूसरी ही दुनिया का समझने लगे हैं। तेज रफ्तार जिंदगी में उन्हें इन कहानियों के ठहरे हुए पात्र शायद 'एलियन' लगते हों।

इन पात्रों से पुरानी पीढ़ी को नेह था। उस वक्त की सोच और स्थितियां इन कहानियों में दिखाई देती थी। लेकिन क्या अबकी सोच की कहानियां नहीं लिखी जा रहीं। लिखी तो जा रही हैं लेकिन शायद दुनिया के साथ तालमेल बैठाने की जल्दी ने हमें जड़ से काट दिया है और

अब आसपास के किसी भी विषय पर कुछ भी लिखा जाना, 'एजेंडा' कहा जाने लगा है। समाज को अपने विचार की नहीं 'वैचारिक प्रतिबद्धता' की ज्यादा चिंता है। इसका दोष किसी एक को नहीं दिया जा सकता। उन्माद ने कहानियों के विषयों को ही नहीं बदला बल्कि उनके ट्रीटमेंट को भी पूरी तरह बदल कर रख दिया है। ठहर कर सोचने तक विषय 'आउटडेटेड' होने का खतरा रहता है। न्यूज फ्लैश होते ही साहित्य का दखल अनिवार्य बनता जा रहा है। इस अनिवार्यता ने साहित्य का सबसे बड़ा नुकसान किया है। जो 'ब्रेकिंग न्यूज' के साथ कलम नहीं उठाते वे अपने गांव, देहात, शहर, परिवेश के अनुभव से उपजे किस्से बयां कर रहे हैं। जब करने के लिए टोकरी भर बहस के विषय हों, तो अनुभव पढ़ने का या उस पर बात करने का किसे वक्त है, किसे फुर्सत।

साहित्य कर्तव्य भले न हो लेकिन यह जिम्मेदारी जरूर है। नामी कथाकार इस जिम्मेदारी को उठाने में पूरी मेहनत कर रहे हैं। नई पीढ़ी भी इसे समझ पाए, तो शायद दृश्य बदले।

इस अंक के लिए कहानियों का चयन करने के लिए कृष्ण बिहारी जी ने पूरी आजादी दी इसके लिए उनका बहुत आभार। उन्हें भरोसा था कि मैं यह काम कर लूंगी और नियत समय पर उन्हें सामग्री सौंप दूंगी। चयन में मैं कितनी सफल हो पाई, यह आप सभी को तय करना है। मेरे अनुरोध का मान रखने वाले सभी लेखकों का धन्यवाद। सबसे पहले ममता कालिया दीदी का धन्यवाद। उन्होंने कहानी देने का कहा और सर्दी-जुकाम होने के बावजूद मेरे अनुरोध पर लिखने बैठ गईं। वे नए लोगों को हमेशा से ऐसे ही प्यार और सहयोग से आगे बढ़ाती रहती हैं। उनका स्नेह हमेशा बना रहे। तमाम व्यस्तताओं को किनारे रख कर राजेन्द्र दानी जी ने कहानी लिखी। उन्होंने वायदा किया था कि वे कहानी जरूर देंगे, और वायदा निभाया भी। मृत्यु पर उन्होंने बहुत रचनात्मक ढंग से यह नए तरह की कहानी लिखी है। हालांकि यह कहानी विशेषांक है, लेकिन नाटक और कहानी को अलग-अलग कर देखना कठिन है। आखिरकार नाटक भी तो एक कहानी लेकर ही बुना जाता है। कहानी के अंक में इस बार एक नाटक भी है। प्रियदर्शन जी ने अपना नया नाटक इस अंक के लिए दिया, उनका आभार। प्रियदर्शन जी ने इस नाटक में कुछ नए और अद्भुत प्रयोग किए हैं, जो पाठको को चौंकाएंगे भी और पसंद भी आएंगे। उनके नाटक में एक पूरी दुनिया का दर्शन है। उनके मन में मंचन से पहले नाटक प्रकाशित होने को लेकर कोई दुविधा नहीं थी। शेक्सपियर और जॉर्ज बर्नाड शॉ के दिलचस्प संवाद के बीच उनकी रचनाओं और इस बहाने उस दौर के समाज को नए नजरिए से देखना वाकई दिलचस्प है। चूंकि बात नाटक की हो रही है इसलिए बीच कहानी के क्रम को बाधा न पहुंचे इसलिए रश्मि भारद्वाज के लेख का जिक्र यही पर करना ठीक होगा। रश्मि ने बीमारी को पीछे धकेल कर इस साल नोबेल पुरस्कार से सम्मानित उपन्याद द वेजिटेरियन पर खूबसूरत लेख हमें दिया। तेजेन्द्र जी का शुक्रिया, जिन्होंने अनुरोध का जवाब देने के बजाय कहानी लिख कर भेज दी। भाई पंकज सुबीर को मैं अक्सर धन्यवाद की जगह 'धनबाद' ही कहती हूं, सो इस बार भी मेरा अनुरोध स्वीकार करने के लिए उन्हें, 'धनबाद!' समय सीमा में कहानी देना कठिन है। कोई भी रचनात्मक काम के लिए वक्त लगता है। सभी रचनाकारों ने बिना देर किए अपनी नई कहानी भेज दी। सभी वरिष्ठों का इसलिए भी शुक्रिया कि उन्होंने मेरे संपादन में भरोसा जताया। अंजू शर्मा, योगिता यादव और अनुकृति उपाध्याय को किसी परिचय की जरूरत नहीं है। तीनों ही स्थापित नाम हैं। प्रज्ञा, अंजू शर्मा, योगिता यादव और नीलिमा शर्मा मित्र हैं, सो उन्हें धन्यवाद देना दोस्ती के उसूल के खिलाफ होगा। अंजू और योगिता दोनों की कहानियां जहां पितृसत्ता पर करारी चोट करती हैं। वहीं प्रज्ञा की कहानी सुदूर दक्षिण से आए एक व्यक्ति की उत्तर भारत में रहने की दुश्वारियों की कथा बयां करती है। तीनों ही कहानियां भाषा और कथ्य और कहने के ढंग के कारण लंबे समय तक अपना असर छोड़े रखेंगी। अनुकृति पर स्नेह भरा हक समझती हूं, इसलिए उनसे संदेश पर ही अनुरोध करना ही था। उन्होंने इसका मान रखा, धन्यवाद। घर बदलने जैसे कठिन काम के बीच प्रियंका ओम ने कहानी लिखने के लिए समय निकाला। तय तिथि से पहले मेल में उनकी कहानी हाजिर थी। शैली खड़कोतकर कुछ पाठको को नया नाम लगे लेकिन हाल ही में उन्होंने कहानी की दुनिया में अपना नाम बनाया है। शैली की कहानियां संवेदनाओं की कहानियां होती हैं। इस बार फिर उन्होंने यह साबित किया। वेबदुनिया डॉट कॉम में मेरे पुराने सहयोगी रहे अभिज्ञात जी ने अपनी लंबी कहानी भेजी। इस बहाने अरसे बाद उनसे बातचीत हुई। सुशांत सुप्रिय जी का भी धन्यवाद, जिन्होंने ई-मेल पर कहानी उपलब्ध कराई। अनिता रश्मि, गंभीर सिंह पालनी जी, शैलेय, अनिता रश्मि, परिधि शर्मा की कहानियां पहली बार पढ़ी। सभी का आभार कि उन्होंने मेरे संपादन में विश्वास जगाया।

निकट के बहाने लंबे समय से ठप या कहूं स्थगित मेरा साहित्यिक दुनिया से फिर संवाद हुआ। कुछ किताबें पलटीं, कुछ कहानियां पढ़ीं। मैं चाहती थी कुछ मेरे और पसंदीदा लेखक इस अंक में समा पाते। लेकिन कुछ कहने में मेरी ओर से देरी, कुछ सामने वालों की व्यस्तता से निकट का यह अंक उनके बिना ही। कभी कुछ आखिरी नहीं होता। क्या पता निकट का कोई अंक पृष्ठ संख्या बढ़ाकर निकले और लेखकों का एक विशाल गुलदस्ता उसमें समा जाए।

आकांक्षा पारे काशिव
नई दिल्ली
9990986868

समय से बात

प्रियंवद को चाहने/न चाहने वाले

कृष्ण बिहारी

प्रियंवद विशेषांक अपने प्रकाशन से पहले ही चर्चा में आ गया था। प्रकाशन के बाद भी इस अंक की चर्चा जारी है। आज भी दो-चार दिन में कोई न कोई फ़ोन आ जाता है। किसी को अंक की प्रति चाहिए तो कोई अंक पर अपनी राय देता है। अंक पर जितनी भी प्रतिक्रियाएँ अखबारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं हैं, वह अपने आप में इस बात का प्रमाण हैं कि प्रियंवद का लेखन अपने समय के रचनाकारों से अलग है। लिखित में मिलने वाली सभी प्रतिक्रियाएँ मैंने प्रियंवद तक पहुंचाई हैं। डिजिटल दुनिया से मेरा कोई खास परिचय नहीं है इसलिए उस पर कहाँ क्या लिखा गया, उसकी जानकारी मुझे नहीं है। गाहे-बगाहे कुछ लोगों ने फ़ोन करके बताया कि अंक पर इस साइट पर या उस साइट पर प्रतिक्रिया आई है। मैं न तो किसी की टाइम लाइन पर जाता हूँ और न फेसबुक पर मेरा कोई जमावड़ा है। अहंकार से भरी दुनिया में यह कैसे कहूँ कि मुझमें अहंकार नहीं है। स्वभावानुसार जब भी मुझे लगा कि यह व्यक्ति आवश्यकता से अधिक चालाक है तो उससे मैंने हमेशा के लिए एक अलंघ्य दूरी बना ली। मेरा अहंकार मात्र इतना है कि मैं व्यर्थ की अशांति नहीं चाहता और अस्पृश्य स्थिति स्वीकार कर लेता हूँ। प्रियंवद विशेषांक पर इतनी अधिक प्रतिक्रियाएँ आ गईं कि उन सबको इस अंक में दे पाने की न तो जगह है और न स्थिति। पत्रिका की पृष्ठ संख्या का तय सीमा से बढ़ जाना कई प्रकार की असुविधा पैदा करता है जिसे झेलना केवल मेरे हिस्से आता है इसलिए मैंने सोचा कि इन प्रतिक्रियाओं के भाव बोध पर मैं खुद लिखूँ। दूसरी बात, जिनकी प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित नहीं होतीं उन्हें उनकी आत्ममुग्धता बेधती रहती इसलिए इन सबसे बचना ही श्रेयष्कर लगा। ख़ैर, यह सब भी एक संपादक को ही झेलना होता है जिसका अपना ही सुख है !

प्रियंवद निश्चित रूप से अलग दिखने और अलग लिखने वाले रचनाकार हैं। ऐसा करना सहज नहीं होता। असहज होना भी होता है। मेहनत करनी होती है जो बहुत-से लेखक करना नहीं चाहते और नहीं करते हैं। प्रियंवद रचनाओं के मामले में उत्पादक नहीं, सर्जक हैं। सर्जना समय लेती है जबकि उत्पादन परिमाण की मात्रा को प्रमुखता देता है। विपुल लेखन में विशिष्टता को कैसे बनाए रखा जाये यह रचनाकारों को प्रियंवद से सीखना चाहिए। प्रियंवद को चाहने वाले उन पर श्रद्धा-भाव भी रखते हैं। उन्हें प्रियंवद का लिखा सबकुछ अच्छा लगता है। प्रियंवद उनके प्रिय कथाकार हैं। अनेक प्रतिक्रियाओं से यह संदेश स्पष्ट उजागर हुआ कि प्रियंवद उनके लिए चमत्कारी लेखक हैं। जब यह भाव प्रमुख होता है तब किसी रचनाकार के कृतित्व पर प्रतिक्रिया भी एकांगी ही होगी। इसका ठीक उलटा भी प्रतिक्रियाओं में मिला। उन्हें प्रियंवद की रचनाओं में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं लगता। कहानियाँ किसी किस्म का कोई संदेश नहीं देतीं। इस तरह की प्रतिक्रियाएँ भी एकांगी ही थीं। मुझे विचित्र तो यह लगा कि एक ही रचनाकार के लिए दो विपरीत ध्रुव जैसी स्थिति क्यों है ! प्रायः ऐसा नहीं होता। कंट्रोवर्सीज होती हैं।मिश्रित प्रतिक्रिया भी होती है। लेकिन एकांगी प्रतिक्रिया बड़े उलझे सवाल छोड़ती है।

साहित्यिक परिदृश्य ही नहीं, हर क्षेत्र में कमोवेश यही स्थिति है। कुंठा ने डंस लिया है। कुछ लोग इसलिए कुंठित हैं कि उनसे कुछ हो नहीं पा रहा है और उनके देखते-देखते 'कुछ' करने वाले आगे की यात्रा पर अग्रसर हैं। कुछ लोग इसलिए कुंठित हैं कि वे जन्मजात दोयम दर्जे के हैं, मीडियाकर हैं लेकिन उन्हें लगता है कि वे सर्वोत्तम हैं और उन्हें महत्त्व नहीं मिल रहा है। यह ऐसी कुंठा है जिसका कोई समाधान उनके सिवाय किसी अन्य के पास नहीं है। हो भी नहीं सकता।

समय से बड़ा निर्णायक कोई नहीं है। किए गए कार्य का सही मूल्यांकन केवल समय ही करता है। प्रियंवद के पास भाषा भी है और अध्ययन भी। यही कारण है कि प्रियंवद का लेखन संशलिष्ट है। उसमें अगर जटिलता है तो वह तार्किकता के लिए भी जगह छोड़ता है। अगर रहस्यवादी दर्शन है तो वह भी मनुष्य के जीवन और मृत्यु की व्याख्या के साथ उसके जीवनानुभवों से सम्पन्न है। समाज ऊपर से जितना सरल दिखता है, उतना सरल है नहीं। उसके बीच के द्वंद्व पर कलम चलाना तलवार की धार पर चलना है। यह जानते हुए भी प्रियंवद यह जोखिम उठाते हैं। बहुत से रचनाकार इस जोखिम से बचते हैं। निश्चित रूप से यही प्रमुख कारण है जो प्रियंवद को उन सबसे अलग करता है।

इस विशेषांक के लिए जिन रचनाकारों ने अपनी रचनाएँ दीं, मैं उनका आभारी हूँ।

समय से बात

देश में कई स्तरों पर विचित्र-सा माहौल है। सामाजिक ताने-बाने पर कई तरह के संकट हैं। राजनीति अब धंधा हो गई है। धंधे का सिद्धान्त अब ईमानदारी नहीं है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए येन केन प्रकारेण वह सब करना है जिससे अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। इसके एवज में समाज को कितना भी नुकसान पहुंचे उससे किसी को कोई मतलब नहीं है।

नववर्षांक, कथा विशेषांक है। इसका संपादन आकांक्षा पारे काशिव ने बड़ी मेहनत से किया है। मैं आकांक्षा का भी आभारी हूँ। सबको नव वर्ष की शुभ कामना।

मो: 6307435896